

श्री १०८ दिगम्बर जैन-आचार्य सूर्यसागरजी महाराज
द्वारा रचित व संग्रहीत

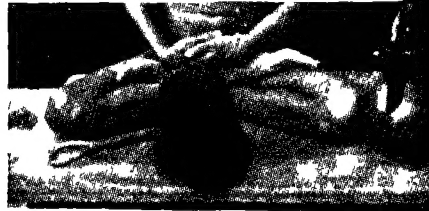
आत्मबोध मार्तण्ड

प्रकाशक

ब्र० लक्ष्मीचन्द वर्णी

आचार्य १०८ श्री सूर्यसागर संघ, चातुर्मास कोटा शहर

गरजी महाराज

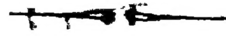


चतुर्मास कोटा सं० २००७
जन्म दिन कार्तिक शुक्ला ९ सं० १९४०
ऐलक दिक्षा दिवस आसोज सुदी ६ सं० १९८१
मुनि दिक्षा मगसर बदी ११ सं १९८१

॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥

श्री दि० जैनाचार्य श्री १०८ सूर्यसागरजी महाराज
द्वारा प्रणीत व संकलित

आत्मबोध-मार्तन्ड



स्वर्गीय सेठ श्री पांथूलालजी पोरवाड़ की
धर्मपत्नी श्री बसंतीबाई की
ओर से भेंट



प्रकाशक—
ब्र० लक्ष्मीचन्द वर्णी
आचार्य १०८ श्री सूर्यसागर संघ,
चतुर्मास कोटा।

तीसरीबार १०००

पौस कृष्णा प्रतिपदा
वीर निर्वाण सम्वत् २४७७
विक्रम सम्वत् २००७

मूल्य स्वाध्याय

❁ वीर प्रार्थना ❁

वीर जिन ऐसा दो बरदान।

हृदय शुद्ध हो बुद्धि विमल हो निर्मल होवे ज्ञान,
द्वेष, क्लेश, भय, लोभ चोभ नश जाय कष्ट अभिमान

वीर जिन०

रंक राव बलहीन बली अरि-मित्र निधन धनवान
भेद भाव इक रहे न समझूँ सब को एक समान।

वीर जिन०

रोगी शोकी, दुखित, सुखित को देख न उपजे ग्लान
करूँ दूर दुःख में उन सबका हर्ष हृदय में ठान।

वीर जिन०

सेवा धर्म होय व्रत मेरा दान प्रेम-रस दान
करूँ विश्व भर की मैं सेवा कर न्योछावर प्रान।

वीर जिन०

दूर होय अज्ञान अँधेरा उदय देख रवि ज्ञान
ज्योति प्रेम जग चहुं दिशि फैले धरें आपका ध्यान।

वीर जिन०

❀ श्री वीतरागाय नमः ❀



१५८८३

आत्मबोध मार्तन्ड

दोहा

कला बहत्तर पुरुष की, तामें दो सरदार।
एक जीव की जीविका, एक जीव उद्धार ॥१॥
पंच परम पद जगत में, आदि मंगल जान।
इनको जो नर समझले, करे कर्म की हान ॥२॥
ये ही निर्मल आत्मा, अर्हत् साधु सुसिद्ध।
इनको ध्याये चित्त में, पुरुष अर्थ हो सिद्ध ॥३॥

अर्थ—अनन्त गुणों का पिटारा जो यह आत्मा है उसे ही पुरुष कहा गया है। उसके अर्थ अर्थात् प्रयोजन मुख्यता से दो वर्णन किये गये हैं। (१) पहिले जीव की जीविका, (२) अपना उद्धार करना (यानि संसार रूपी पींजरे से अपनी आत्मा को बाहर निकालना) यही पहिला धर्म इस जीव के लिये आचार्यों ने बतलाया है। इसलिये आगे कहते हैं, कि यह जीव संसार में अनादिकाल से है। इसने सदा से अपनी जीविका का ही उपाय किया है।

आज तक इस जीव ने यह विचार नहीं किया कि मेरा उद्धार क्या है ? इसलिये इसके वास्ते महर्षियों ने उपदेश किया है, कि हे भाई ! तू अनादिकाल से अपने हित को भूला हुआ है। तूने मनुष्य शरीर और (जैन धर्म समान) उत्कृष्ट धर्म को प्राप्त किया है। अब तेरे तीव्र पुण्य कर्म का शुभ उदय आया है। इससे तू ऐसा उपाय कर जिससे इस संसार रूपी चक्र से तेरा आत्मा बाहर निकल जावे, यही तेरा पुरुष होने का प्रयोजन है। अब तू वैसा ही कर्त्तव्य कर, जिससे तेरी नैया भवसागर से निकल कर नित्य आनन्द मय सुख द्वीप को प्राप्त करे।

संसारी जीवों के लिये सुख और शान्ति का उपाय एक साम्यभाव रखना ही है। इस साम्यभाव के बिना मनुष्य जन्म पाना ही वृथा है। यही नीचे उपदेश द्वारा समझाते हैं।

प्रत्येक मनुष्य को चाहिये कि सबसे पहिले वह यह विचार करे कि संसार में कितने प्राणी हैं और उनकी क्या क्या हालत हो रही है। उनमें मेरी क्या व्यवस्था है ? उससे पता लगेगा कि दूसरों से मेरी हालत अच्छी है या बुरी। इन दोनों प्रकार की हालतों का विचार करना ही मनुष्य की मनुष्यता कहलाती है।

उन दोनों हालतों में से जब तुम्हारे सामने एक

आयगी तब उसमें विचारो कि इनसे मेरी अवस्था शोचनीय है तो क्यों ?

आपको उत्तर मिलेगा कि तुम्हारी यह शोचनीय दशा है, सो तुम्हारे पूर्व कार्यों का फल है।

यह सिद्धान्त निश्चित है कि जो जैसा करेगा वह वैसा ही फल पायगा। मैंने पूर्व में अच्छा किया है या करूंगा तो अच्छा उदय आयगा, और बुरा किया है या करूंगा तो बुरा फल भोगना पड़ेगा, इसलिये इस बात का सदा ध्यान रखना चाहिये कि कभी भी दूसरे प्राणियों की आत्मा को दुःख नहीं पहुंचे, यही मनुष्य का मुख्य काम है।

जब तक आदमी अपने ऊपर ख्याल नहीं करता तब तक दूसरों के भले बुरे का विचार ही नहीं कर सकता, इसलिये सबसे पहले मनुष्य को अपने सुख-दुख का अनुभव करना चाहिये। मुझे जो चीज अच्छी या बुरी लगेगी वही दूसरे को भी समझना चाहिए। जब अपने ऊपर विचार करेगा तब दूसरों के बारे में कदापि खोटा विचार न करेगा और तभी पाप से बच कर सुख को प्राप्त हो सकता है। संसार में जिन प्राणियों ने दूसरे के प्रति उपकार किया है उन्हीं जीवों ने संसार से पार होने का मार्ग पाया है।

अब उन शांत भावों की संसारी जीवों को खोज बताते हैं, वह शांति किसने और कैसे प्राप्त की है, सो सुनिये—

दोहा

आपा पर को समझ कर, किये घातिया चूर।
वेही जग जीवन प्रभु, समझ आत्मा सूर ॥
वैसा तुम अनुभव करो, हो जाओ भव पार।
दासोऽहं में रमत हो, ये नहीं आतम सार ॥
दहा में दो ही बसें, सो ही करता भेद।
ये दोनों छोड़े बिना, नहीं मिटे भव खेद ॥
सब से उत्तम अहम् है, समझो पहिले एह।
सुख में एही सार है, तज देखो सब नेह ॥
सोहं में रम जाइये, ये ही तेरा काम।
बिना रमण इसमें किये, नर भव आयु निकाम ॥
जिनवर का उपदेश यह, पहिले समझो आप।
जब तुम निज को समझलो, फिर न तपो भवताप ॥
जैसी करणी हम करी, तुमको दई बताय।
वैसे में रम जाइये, ये ही मोक्ष उपाय ॥
जिस करणी से हम भये, अरहंत सिद्ध भगवान।
सो ही करणी तुम करो, हम तुम एक समान ॥
आतम रुचि सम्यक्त्व है, आतम समझे ज्ञान।
आतम में स्थिरता करो, येही चरण महान ॥

कहने के यह तीन हैं, आतम द्रव्य स्वभाव ।
भव्य बिना नहीं पाइये, कोटिक करो उपाय ॥
आपापर को समझ कर, पर को देओ त्याग ।
सम्यग्दर्शन ज्ञान व्रत, इनही में चित पाग ॥
दद्दा मे दर्शन करो, सस्सा माहिं समाय ।
रम जाओ जब अहम् में, तब ही एक लखाय ॥

इस प्रकार की व्यवस्था जो कोई भी जीव करना चाहे तो उसे सबसे पहिले अपने आत्मा को शांत बनाना चाहिये । जब तक आत्मा में शांति नहीं होगी तब तक सब करनी बिफल है । और जब ऐसा बन गया तब ही पूर्णरूप से सफलता प्राप्त होगी, सो ऐसा कार्य सामायिक के बिना न किसी ने किया, न हो सकता है ।

अतः यहाँ उस सामायिक का स्वरूप बताया जाता है । सबसे पहिले सामायिक क्रिया में पूर्व या उत्तर दिशा मुख्य मानी है ।

प्रश्नः-आपने जो पूर्व और उत्तर दिशा मुख्य कही है, सो ये दोनों ही दिशा क्यों मुख्य मानी है ?

उत्तरः-जैन धर्म में पूर्व उत्तर दिशा मुख्य इसलिये मानी है कि समस्त दिशाओं और विदिशाओं में सूर्य को उगाने वाली एक पूर्व दिशा ही है । कहा है कि-सारी

दिशा धर रही रवि का उजेला, पै एक पूर्व दिशा रवि को उगाती। इसलिये पूर्व दिशा ही मुख्य है।

उत्तर दिशा मुख्य यों मानी है कि उस ओर विदेह में सदा तीर्थंकर रूप सूर्य का उदय रहता है।

इसलिये उत्तर या पूर्व में मुंह करके खड़े होकर ९ नव बार पंच नमस्कार की जाप्य करना चाहिये और तीन आवर्त करना यानि मन, वचन, काय से दोनो हाथों को जोड़ कर बाईं तरफ से दाहिनी तरफ को तीन बार घुमाना और अन्त में एक बार मस्तक नवाना चाहिये पश्चात् अपने दाहिनी ओर घूम कर दूसरी दिशा की तरफ उसी प्रकार नव बार जाप्य जप कर तीन आवर्त एक शिरोनति करके, फिर तीसरी दिशा में, बाद में चोथी दिशा में तीन आवर्त और एक शिरोनति कर, जिस दिशा में खड़े होकर प्रारंभ किया था उसी स्थान पर फिर ऊपर नीचे को आवर्त शिरोनति सहित बैठ कर नमस्कार करना। फिर इतना सामान मेरे बदन पर व नीचे आसन है वह और मेरे चारों दिशा में साढ़े तीन हाथ प्रमाण स्थानरूप परिग्रह है, इसके सिवाय इतने समय तक सब प्रकार के परिग्रह का मेरे त्याग है। ऐसा नियम करके जमीन पर या पाटले पर या आसन पर, जो आसन अपने को किसी प्रकार बाधा नहीं करे वैसा पद्मासन,

अर्धपद्मासन, पर्यंकासन आदि में से कोई आसन लगा कर बैठ जावें, चाहें तो खड़े होकर भी सामायिक कर सकते है। उस समय आत्मा स्वभाव का चिन्तवन करे कि हे आत्मन, तू कहां से तो आया है, और कहां जायगा और यह बनाव कैसे बन रहा है, और जो सामने आ रहा है उसमें तेरे राग द्वेष होता है या नहीं। अगर राग द्वेष होता है, तो क्यों ? ऐसी मनुष्य पर्याय को पाकर फिर विचार नहीं किया तो मनुष्य पर्याय पाने से लाभ ही क्या उठाया। इस प्रकार के विचारों में उपभोग लगाना चाहिये।

अगर इस प्रकार के विचारों में उपयोग नहीं रमे, तो फिर नीचे लिखी बातों पर आत्मा को लगाना चाहिये।

यहाँ पर दृष्टांत द्वारा समझाया जाता है:—एक गृहस्थ को जंगल में फिरते २ एक राक्षस मिल गया वह राक्षस बड़ा चमत्कारी था। उस गृहस्थ के और राक्षस के मित्रता हो गई, अब वह राक्षस उस पुरुष के पास रोज आने जाने लगा। एक दिन उस गृहस्थ ने राक्षस से कहा कि तुम रोज आते जाते हो, सो वहां न जाकर यहाँ ही ठहरो, राक्षस ने कहा कि मैं बिना काय नहीं ठहरता हूँ, मुझे कोई काम बताइये, मैं एक समय भी बिना काम के नहीं बैठता, तुम अगर मुझे रोज काम नहीं बताओगे तो मैं तुम को मार डालूंगा ऐसा उन दोनों में वायदा होगया।

इस प्रकार गृहस्थ जो काम बतावे, वह राक्षस उस काम को तुरन्त कर डाले और फिर कहे कि काम बताओ तब वह गृहस्थ उस राक्षस से घबराया और एकान्त में बैठ कर विचार करने लगा, कि काम बतलाता हूं तो कोई काम है नहीं, और नहीं बताता हूँ तो मुझे मार डालता है। अब क्या करना चाहिये।

आखिर एकान्त में उस गृहस्थ ने सोच विचार कर यह निश्चय किया कि हे आत्मन् तुम उस राक्षस से कहो कि जंगल में जाकर वृक्ष की बिलकुल सीधी और बहुत लम्बी डाल काट कर लाओ और हमारे मकान के सामने एक चबूतरा बना कर उसको गाड़ दो। फिर लुहार के यहां से एक लोहे की सांकल लाओ और उस साँकल में दो बड़े कड़े लगाओ। एक कड़े को उस चबूतरे वाली डाल में डालो और दूसरे कड़े को अपने गले में डालो जब तक हम दूसरा काम नहीं बतायें तब तक इस लट्ठे पर चढ़ो और उतरो।

इसके कहने का अभिप्राय यह है कि मनरूपी राक्षस को जब तक मोक्ष प्राप्ति रूपी दूसरा कार्य सामने नहीं आवे, तब तक सिद्धांत रूपी अनुभव में रमाना या बारह भावनादि में रमाना या आत्मा चिन्तवन में लाना चाहिये।

नहीं तो यह मन रूपी राक्षस पांचों इन्द्रियों के विषयों

में फँसा कर इस आत्मा को नरक या तिर्यंच गति में या निगोद में लेजा कर अनन्त काल तक दुःखों के गर्त में डाल देगा और महान यातनायें दिलायगा।

इस प्रकार आगे हिन्दी पद्यों से आत्मा का स्वरूप बताया जाता है:—

॥ चेतन चौवीसी रत्नावली ॥

जो पर भावों को तज करके, निजानंद में मग्न रहाय।
ध्यान हीन उसको नहीं पावत, स्वशरीर के मांहि बताय ॥१॥
पूर्ण सुक्ख का है करण्ड वह, पूर्ण ज्ञान अमृत समुदाय।
वीर्य दर्श पूरण जिन आतम, वही आत्म परमात्म कहाय॥२॥
द्रव्य कर्म या भाव कर्म, या नौ कर्मों बिन है समुदाय।
निज परमातम शुद्ध चेतना. ऐसा आतम शुद्ध कहाय ॥३॥
राग रहित चिंता निज उत्तम, राग सहित पर मध्यम जान।
काम भोग इच्छा है अधमा अधमाधम पर बुरा बखान ॥४॥
नाश करो संकल्प विकल्प का, ज्ञान सुधारस ग्रहण करेय।
इन भावों से आतम ज्ञानी, सदा सास्वता अनुभव लेय ॥५॥
यह उत्तम औ अमिट साश्वता, आत्म भाव में जाग्रत एह।
इसमें सदा रमण वह करता, सो जानों पण्डित गुणगेह ॥६॥
कमल पत्र अम्बु में रहता, निज निज गुण से भिन्न रहाय।
इस प्रकार देही में बसता, देह आत्मा एक नहीं थाय ॥७॥
द्रव्य कर्म व भाव कर्म का, आतम से नहीं मेल कराय।

तो नोकर्म शरीरादिक में कैसे आत्म भिन्न नहिं पाय ॥८॥
पूर्ण ज्ञान घन निज आतम है, अपने तन के मांहिं बसाय।
ध्यान हीन नर देखत नाहिं, जैसे बासर घूक नहिं पाय ॥९॥
ऐसा ध्यान करो तुम भविजन, विकृति तज मन थिर होजाय।
तब आतम परमात्म तत्व का, परोक्षरूप अनुभव में लाय ॥१०॥
जो मुनिपुंगव ध्यान सहित हैं, वे ही आतम लाभ लहाय।
अरहंत होके कर्म नास कर, शिव नगरी में वेग बसाय ॥११॥
जो योगीश्वर सब विकल्प को, आत्म तत्व से वेग भराय।
हो आनंदरूप परमानन्द, निज स्वभाव में रमण कराय ॥१२॥
बाह्याभ्यन्तर छोड़ परिग्रह, चिदानन्दमय है सुखदाय।
शुद्ध निरंजन आत्म तत्व का, सुचिरं काल तक अनुभव पाय।१३।
लोक बराबर चित् प्रदेश हैं, ऐसा निश्चयनय बतलाय।
तनु प्रमाण कहते व्यवहारी, ऐसा मत जिन मार्ग बताय ॥१४॥
शुद्ध आत्मा का अनुभव कर, मन की भ्रान्ति शीघ्र नशाय।
जब थिर होय चित्त निर विकलप, श्रीजिनवर पद यही कहाय॥१५॥
बुद्ध वीर जिन हरिहर ब्रह्मा, खुदा गॉड ईसा प्रभु सोहि।
सो ही पूर्ण तत्व का ज्ञाता, परम पुरुष उत्तम गुरु सोहि ॥१६॥
सोई परम ज्योति परमातम, उत्तम तप जग समझो सोय।
परम ध्यान वह कहलाता है, निज अनुभव परमातम होय ॥१७॥
सोई मोक्ष मूल है उत्तम, सुख अनन्त का वह समुदाय।
वही शुद्ध है चित् स्वरूप है, वही चिदानन्द शिवका राय ।१८।

ऐसा परमानन्द आत्मा, परम शुद्ध चेतन ठहराय ।
गुण उत्कृष्ट अमित माश्वत है, क्षीर उदधिज्यों निज गुणमांय।१६।
ऐसा आतम अर्हन्त जिनवर, मात योग युत राग नशाय ।
परमाल्हाद दिव्य कथनीकर, ऐसा समझो पंडितभाय ॥२०॥
द्रव्य कर्म नो कर्म बिना अरु, भाव कर्म बिन मुक्त कहाय ।
अष्ट गुणों युत सिद्ध कहावें, निज स्वरूप में समय बिताय।२१।
सिद्ध सामाना परखत निज को, सर्व कर्म बाके नशजाय ।
अर्हत होय सिद्ध पद पाते, सोही जग में पंडित थाय॥२२॥
सिद्ध समान जीव है वपु में, जैसे सुवरण पत्थर माहि ।
तिलके माहिं तेल है जैसे, घृत पदार्थ जिम दुग्ध रहांहि ॥२३॥
काष्ठ मध्य अग्नि है जैसे, ऐसा आतम कल में जान ।
यों विवेकजन श्रद्धा लाते, सम्यक दृष्टी पंडित मान ॥२४॥

इसके आगे और भी साम्यभाव के लिये कहा जाता है. बधे करना आत्म कल्याण के हेतु श्रेयस्कर है।

निजानंद स्तोत्र

दोहा

सिद्धातम है जगत में, कर्म कलंक विहीन ।
नमस्कार अनुभव किये, हो जाते स्वाधीन ॥१॥

सवैया २३ सा

राग बिना निर्मल निज ध्यावे, वे होते जग में अरहंत ।
पहिले उनको जग ध्यावत है, उन्हें अनुभवें बनें निशंक ॥

ऐसी उत्तम सिद्ध आत्मा, समझ रमण से मिटे कलंक ।
अनुभव करलेवें जगवासी, कटे फांस अरु बने महंत ॥

दोहा

रत्नत्रय मय जगत है, शक्ति व्यक्ति का भेद ।
जब तक जी समझे नहीं, पावत है बहु खेद ॥३॥
रत्नत्रय पाये बिना, ना कोई कीनी सिद्ध ।
याते रत्नत्रय लहो, करो कर्म से युद्ध ॥४॥
निज श्रद्धा सम्यक्त्व है, निज जाने सुज्ञान ।
निज संपति में थिर रहे, सच्चारित्र बखान ॥५॥
आपा परसों भिन्न लखि, परको दे छिटकाय ।
सम्यग्दर्शन ज्ञान व्रत, का यह ठीक उपाय ॥६॥

॥ सम्यग्दर्शन का स्वरूप ॥

पद्धरी छन्द

अनंतानुबंधि मिथ्यात्व जान, इससे होवे सम्यक्त्व ज्ञान ।
इनको उपशम या नाश होय, अर मिश्र[१] सहित ये तीन होय ॥
इस विधि से सम्यक् उदय जान, याहीको निज श्रद्धान मान ।

॥ सम्यग्ज्ञान का स्वरूप ॥

यह जीव तत्व को निज स्वरूप, पहिचाने सम्यग्ज्ञानि भूप ।८।

[१] क्षयोपशम ।

।। सम्यक्चारित्र का स्वरूप ।।

दोहा

सम्यग्दर्शन ज्ञान ले, धरो दिगंबर वेष ।
इससे मुक्ति होत है, कटते कर्म कलेश ।।९।।

।। ध्यान का लक्षण ।।

फिर ध्यावो निज चितवो, अपनी आतम जान ।
येही सहज उपाय है, समझो आतम राम ।।१०।।
राग द्वेष वर्जन करो, मिटे सकल संताप ।
स्वसुभाव जाने बिना, मोक्ष होय न कदापि ।।११।।
सम्यग्भाव अभाव से, चेतन नाना रंग ।
निज को निज में जिन लखे सुख में पड़े न भंग ।।१२।।
देव गति में तरसता, कब पाऊं नर देह ।
कब मैं मत चारित्र लहुं, तजं जगत से नेह ।।१३।।
अब नर जामों मुझ मिल्यो, अब न संभालूं आप ।
तो जग में रुलता फिरूं, सदा सहूँ बहु ताप ।।१४।।
आये तब लाये नहीं, साथ कछू नहीं जाय ।
बिच ही पायो रह्यो बीच, याते प्रीति नशाय ।।१५।।
प्रीति करें दुःख होत बहु, प्रीति गये सुख पाय ।
राग द्वेष संसार है, सदगुरु यों फरमाय ।।१६।।
याते चेतन जीव जी, जग से ममता छोड़ ।

निज आतम को जान कर, इससे ममता जोड़ ॥१७॥
सम्यग्दर्शन ज्ञान मय, चारित्र का संयोग।
रमण करो इस मांयने, मिटे जगत का रोग ॥१८॥
मानुष भव अवसार मिला, फिर ऐसा नहिं पाय।
अब के चूके क्या खबर, कैसी मति हो जाय ॥१९॥
याते सुख तोहि चाहिये, तो निज को पहिचान।
उसमें ही रम जाइये, ये ही सुख की खान ॥२०॥
सुन ले चेतन जीव जी, फिर न तपो भवताप।
सकल कर्म को नाश कर, रहत आप में आप ॥२१॥
इस विध सुख की विधि कही, कर इसमें सरधान।
अनन्त जीव ऐसा किया, हुए सिद्ध भगवान ॥२२॥
आतम अरु परमात्मा, द्रव्य दृष्टि से एक।
ऐसा मन निज कर भया, येही तेरी टेक ॥२३॥
सद्गुरु कहे जग जीवसो, तुम्हें अनन्ते काल।
इस जग में दुख पाइयो, अब छोड़ो जंजाल।२४॥

रोला छन्द

आतम सोही परमात्म जान, तब ही तेरा कल्याण मान।
जगरूप भ्रांति दुख की जु मूल, ये छूट गई मिट गया सूल ॥
यह मनुज जन्म कर्त्तव्य सार, तब ही जी सुख पावत अपार।
जब भेद भाव को नाश होय, तब परमातम पर सार सोय ॥

इस प्रकार आत्मा जब श्रद्धान, ज्ञान और आचरण

बना लेता है, तब ही उसका पुरुषार्थ कहलाता है और उसी से वह पुरुष नाम को सार्थक बनाता है ।

प्रश्न—आपने जो कहा सो तो ठीक है, पर इसके उपरांत और भी कोई उपाय है क्या ?

उत्तर—सामयिक की विधि तो इसमें हम पहिले बतलाही चुके हैं, परन्तु उसे थोड़ा सा और खुलासा करके बतलाते हैं यह मन रूप बंदर बड़ा ही चंचल है, इसको स्थिर करने के लिये दूसरे उपाय को आप ध्यान पूर्वक सुनिये :—

जब अपने आत्मा का शुद्ध विचार किया जाय और उस समय चित्त स्थिर न हो तब अपने हृदय में एक अष्ट पाँखुडी के कर्णिका सहित कमल की रचना कर उस कर्णिका का आकार नीचे लिखे अनुकूल बनाकर उसका ध्यान इस तरह किया जाय ।

ईशान सम्यग् दर्शनाय नमः ६	पूर्व णमो सिद्धाणम् २	आग्नेय सम्यग् ज्ञानाय नमः ७
उत्तर णमो लोए सव्वसाहूणं ५	णमो अरहंताणम् १	दक्षिण णमो आइरियाणम् ३
वायव्य सम्यग् तपसे नमः ९	पश्चिम णमो उवज्झायाणम् ४	नैऋत्य सम्यक् चारित्राय नमः ८

नोट-इस नकशे का गोल ब्लाक तैयार न हो सकने से यह चौकोर छपाया गया है। पाठक इसे गोल(कमलाकार)समझलें

इस प्रकार बीच की कर्णिका और आठ पांखुरी सहित कमल अपने हृदय कमल में बनाकर ऊपर जो जो शब्द जिन जिन दिशाओं में लिखे हैं, उनको वहां स्थापित करके उसी रूपसे चिन्तवन करना चाहिये। जिसमें शाँति के साथ दो घड़ी (४८ मिनट) समय लग जाता है।

इसके सिवाय आगे और भी बताया जाता है।

पद्धरी छन्द

इस जगत माहिं छह द्रव्य, मान,
पर्याय सहित गुण को निधान॥
मंगल अरहतरु सिद्धजान, मैं नमूं जोर जुग तिन्हें पान॥१॥
षट्द्रव्यों की नहीं आदि अंत, निज स्वरूप में, सब वसन्त॥
तिन मांहि जीव विवेक वान, है सिद्ध समान निगोद जान॥२॥

दोहा

द्रव्य दृष्टि से जीवड़ा, सिद्ध निगोद समान।
ऐसा जिनमत कहत है, ऐसा कर सरधान॥ ३ ॥
इस विधि हृदय धारकर, करहु स्व पर का भेद।
जिससे बेड़ा पार हो, मिटे जगत का खेद॥४॥

पद्धरी छन्द

अब सर्व जीव हैं मुझ समान, अब करूँ राग अरु द्वेषहान
रख सर्व जीव से साम्यभाव, मैं तजूँ देह अरु विषय चाव॥५॥

दोहा

राग द्वेष युत होय कर, बहुत दुखाये जीव।
तिन सबसे मैं क्षमा लहूं, उतरों भव दधि सीम ॥६॥
तीनों योग संवार कर, कृत कारित से जान।
रत्नत्रय खंडित किया, मिथ्या हो भगवान ॥ ७ ॥
मनुष देव तिर्यश्च कृत, जो होवे उपसर्ग।
थिरता से मैं ना चलूँ, ये ही मेरा वर्ग ॥ ८ ॥
राग द्वेष भय शोक मद, ममता मोह विहीन।
आत्म भाव इनसे नशे, याते हो आधीन ॥ ९ ॥

पद्धरी छन्द

मम जीवन मरण अलाभ लाभ, है बन्धु वर्ग से भाव आन।
है सुख दुख दोही एक मान, अरु कंचन काच समान जान ॥१०
ये आत्म भाव से भिन्न जान, मेरा है दर्शन चरण ज्ञान।
मैं एक सदा अस्तित्व रूप, मेरा है लक्षण सुख स्वरूप ॥११॥
ये जितने भी पर भाव आप, इन माहिं एक मेरो भी नाहिं
ये हैं संयोगज दुःख रूप, इनको त्यागे वे जगत भूप ॥ १२ ॥
जो साम्य भाव की तोहि चाह, तो सामायिक बिन प्राप्ति नाहिं
इम मनुज जन्म को सार पाय, तो निज को निज में रमण लाय

इस प्रकार के चिन्तवन के बाद समय बाकी रहे तो और पाठों का चिन्तवन करना चाहिये जिन्हें आगे बताया जाता है।

सामायिक चालीसा

(नैनसुखदासजी कृत)

मंगलाचरण—

मंगलं भगवान वीरो, मंगल गौतमो गणी ।
मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥

दोहा

ॐ ह्रीं अर्हं परम पद, इष्ट हृदय अवधार ।
अघ अपराध क्षमावणी, कहूँ सामायक सार ॥१॥

चाल छन्द

जिन लोक शिखर स्थित कीनी, जगजाल जलांजुलि दीनी ।
तिनको परिणाम हमारो, मोहि जान दुखी निस्तारो ॥ २ ॥

गीता छंद

निस्तार अपनो जान के, आचार्य पद वन्दन करूँ ।
उवझाय साधुप शान्ति चित्त, चरणारविन्दन में परूँ ।
जे वस्तु तत्व विचार समता, धार अणुव्रत आदरें ।
पालें निरन्तर शील तिनहि, त्रिकाल हम वन्दन करें ॥३॥

चाल छन्द

जेते तिहुं लोक मंझारी, जिन मन्दिर जग अघहारी ।
कृत्रिम अरु जे अघनासी, वन्दत कटती जग फांसी ॥४॥

गीता छन्द

कटि जाय फांसी त्रिविध मेरी, दुःख सागर में पर्‍यो।
नहिं कियो सुकृत हे जिया चिरकाल संकट ही भर्‍यो॥
जो करे जैसी भरे तैसी, दोष किसको दीजिये।
करणी का फल उसको मिलत है, यही निश्चय कीजिये॥५॥

चौपाई

हम निज अनुभूति न जानि पर परिणति में मति ठानी।
भव बन्धन बेल बधाई बीत्यो चिरकाल यहां ही॥ ६॥

गीता छन्द

बीते अनन्तानन्त कल्प, विकल्प ही में दिन गये।
नहिं घटी संशय, बढ़ी तृष्णा किये बन्धन नित नये॥
किस विधि तिरे नैया हमारी, पाप पत्थर से भरी।
जन्मादि के जंजाल में, यह कर्म के वश में परी॥ ७॥

चाल छन्द

पकड़ो तुम धर्म सहारो लेकर आतम निर्वारो।
बनकर समर्थ जगत्राता, बिन कारण बन्धु विख्याता॥८॥

गीता छन्द

विख्यात यश आतम तुम्हारो, भील से जग तिरगये।
अनुभव प्रताप त्रिलोक पति, जिननाथ नेमीश्वर भये॥

तिरगये शूकर सिंह मर्कट, निबल पशु पत्ती घने।
भये वृषभसेन गणाधिपादि, आदि जिनवर के कने ॥६॥

चाल छन्द

गज श्वान सर्प अरु भेका, अंजन आदिक जो अनेका।
निज अनुभव ने बहुतारे, पहुंचे शिव स्वर्ग मंझारे ॥१०॥

गीता छन्द

पहुँचे स्वरग अरु मुक्ति में, दण्डकनारदिक अघ भरे।
जिन पांचसौ मुनि मार, घानी डार कर चूरण करे॥
महावज्र पाप कलंक मंडित, तिरगये दुख द्वन्दते।
यह जान निजकी शरण लीनी, निरवरूं जग फंदतं॥११॥

चाल छन्द

तुम वीतराग जगभूपा सर्वज्ञ चिदानन्द रूपा।
समदर्शी नित्य तुम्हारे घट घट की जानन हारे॥ १२ ॥

गीता छन्द

मैं आपजानूं कर्म अपने; कौन से विनती करूं।
मैं चोर निज को कौन राखे, शरण किसकी आदरू॥
मैं तिरूं वा निस्तरूं जग में, शरण आतम सार है।
इस विकट संकट जाल में, निज भाव तुमरा अधार है॥१३॥

चाल—

पूरव भव पाप कमाये, तृष्णावश जीव सताये ।
तिन सबतें अर्ज हमारी, अब करहुँ क्षमा सुखकारी ॥१४॥

गीता—

करिये क्षमा, सुखदाय, मैं, अज्ञान वश हिंसा करी ।
मिथ्यावचन कहि दुःख दिये, छलछिद्र कर लक्ष्मी हरी ॥
सेये कुशील कुकर्म कीने, बढ़ी तृष्णा नित नई ।
लिपट्यो परिग्रह जाल में, कर पांच अघ दुर्गति लई ॥१५॥

चाल—

पण थावर हिंसा कीनी, खनि पृथ्वी पीडा दीनी ।
धरि अग्नि तपायो पानी, पावक दलमली अज्ञानी ॥१६॥

गीता—

अज्ञान वश पावक प्रजाली, पवन तरुवर संहरे ।
चूल्हादि ऊखल मुसलते, बहु जीव जंगम पशु हरे ॥
चाकीनतें तन पीस डारे, ईर्यापथ सेती टरो ।
या भांति जिनपर भई बाधा, सो क्षमा हम पर करो ॥१८॥

चाल—

धरि क्रोध जिन्हें दुख दीने, कर मान अनादर कीने ।
धोखा दे प्राण दुखाये, करे लोभ प्रपंच भ्रमाये ॥१८॥

गीता—

प्रपंच कर जग में भ्रमाये, क्षमा मन में ना धरी।
कटु वचन भाखे दगा दीने, वितथ वाणी आदरी॥
तज शौच, संयम, तप कियो नहिं, त्याग आकिंचन हरो।
शीलादिको तज, पाप बांधे, सो क्षमा हम पर करो ॥१६॥

चाल—

कृमि कीडी भँवर सताये, समनस अमनस भरमाये।
दल मल अरु बांधे मारे, भाखे दुर्वचन अपारे ॥ २०॥

गीता—

भाखे कटुक वच, कान छेदे, कंठ नासा खंडियो।
अति भार रोप अनर्थ कीने दन्त डंक विहिंडियो॥
धर्मीन पर उपसर्ग कीने, तीर्थ पर पातक करे।
सब जीव करियो क्षमा, तजकर शल्य, हम पायन परें। २१॥

अडिल्ल

स्वर्ग नरक नर लोक विषें, प्राणी जिते।
चारों गति में वर्तमान जित तित तिते॥
मैं चित में कर जोर अरज इतनी करूं।
करहु क्षमा अपराध भवोदधि से तिरूं॥२२॥

गीता

मैं तिरूं भव सागर दुखाकर, जो कृपा इतनी करो।
अपराध काल अनादि के, मम आज लों के परिहरो॥

मैं किये घोर अनर्थ जिन पर, बिना कारण दुख दियो।
जित होय तितहि क्षमा कराऊं, धर्म को शरणो लियो ॥२३॥

अडिल्ल

बीत्यो काल आनादि किये अघ भारही।
भ्रम्यो चौरासी लक्ष योनि में भारही ॥
रही कौनसी ठौर जन्म जहां नहीं लियो।
कौन जीव से नाता जग में नहिं कियो॥२४॥

गीता

नहिं कियो नाता कौन सेती, वैर किससे नहिं करो।
चिरकाल धर धर स्वांग, नर्क निगोद में गिरगिर परो॥
पशु योनि में बहु दुःख पाये, तजहु शल्य दुखाकरी।
भव भ्रमण छूटे कर्म टूटे, मिटे पुद्गल चाकरी ॥२५॥

अडिल्ल

जोलों कर्म कुबन्ध बंधो जग में फिरूं।
पाणि पात्र आहार न जबलों मैं करूं ॥
जबलों चार कषाय हृदय से ना टरे।
तबलों चारों शरण भावना हम करें ॥२६॥

गीता

हम करें चारों शरण केरी, भावना चित चावसों।
दिन रैन श्वासोच्छ्वास में, अर्हंत निकसो भावसों ॥
जग भोग संपति मैं न चाहूँ, और अब ऐसी करूं।

संतोष में चित होय थिर, भव भ्रमण के दिन उद्धरूं ॥२७॥

अडिल्ल

आतम दीन दयाल वैद्य करुणापति ।
मैं दुखिया संसार कर्म रोगी अति ॥
गठरी में नहिं दाम न सुकृत मैं कियो ।
जिनकी शरण विसारो मरो, अब मैं जियो ॥२८।

गीता—

जियो न मरो रहो जगमें, भरी वेदन मैं घनी ।
किह विध कहूँ अपनी व्यथा, चिरकाल जो मोपै बनी ॥
सुत मात दारा कान चारा, सगे सब देखत रहे ।
विन पुण्य खाली हाथ नर्क, निगोद के संकट सहे ॥२९॥

अडिल्ल

डारयो भाड मंझार पकड शूली धरयो ।
पेल्यो घाणी घालि पीस चूर करयो ॥
काट्यो कंठ कुठार विदारयो तन सबै ।
पायो तांबो गाल बढ़ी वेदन तबै ॥

गीता

बढ़ी वेदन, किये छेदन, फूंक मुख कूंचा दियो ।
कहे नारकी दुर्वचन पापी, क्यों न ते सुकृत कियो ॥
बिललाय पासन लोट हारी, किनहु मेरी ना सुनी ।
चिरकालतें भगवान ये, संकट सहे त्रिभुवन धनी ॥

अडिल्ल

आतम समर्थ निज भाव छुड़ा जग फन्दते।
चौरासी लक्ष योनि तने दुःख द्वंदते ॥
तुमसा दाता कौन निजहीं जग तात हो ।
बिन कारण जग बन्धु तुम्ही विख्यात हो ॥२३॥

गीता

विख्यात हो सर्वज्ञ सत्य, अमोघ वाणी उच्चरो।
वर्षाय धर्मामृत जगत के, पाप आतप तुम हरो ॥
प्रभु सुन तुम्हारे बैन, पशु पक्षी अणुव्रत आदरे ।
गज सिंह मोर भुजंग, समता भाव धर भवजल तिरे॥

अडिल्ल

जाति विरोधी जीव मिलें हितलाय के ।
करें निजारथ काल लब्धि बल पाय के ॥
तो मोहि संशय नाहिं शरण खुद की लही।
लाजे आतम नाम जो अब उरझी रही॥२४॥

गीता

उरझी रही नैया हमारी, शरण निज की आयके।
तो करे कौन सहाय मेरी, कर्म मच्छ हटाय के॥
हूं पूर्ण ब्रह्म विवेक सागर, धर्म लाभ यह कीजिये।
मैं रहूँ अपने आप मांही, यहि कर्तव्य हूजिये ॥२५॥

अडिल्ल

इन्दु धर्म हुत नन्द सु संवत् सार है।
माघ शुक्ल दशमी गरुडाग्रज वार है ॥
भादों सप्तम श्याम कांपलापुर, वरो ।
विनवे नयनानन्द जगत मंगल करो ॥३६॥

दोहा

यह अपराध विमोचनी, सामायिक गुण माल ।
जो नर पढ़ें त्रिकाल ही, कटे कर्म जंजाल ॥३७॥
नन्दो विरदो जगत में, अधिकारी भव जीव ।
जिन्हें स्वपर हितकारिणी, उपजे सुमति सदीव ॥३८॥
बीत्यो काल अनादि ही, किये कर्म अघ भार।
चहुं गति सगरे हिंडियो, कियो न जपतप सार ॥३९॥
एक घड़ी आधी घड़ी, एक पलक छिन एक ।
जो सामायिक आदरे, छूटे पाप अनेक ॥ ४० ॥

वज्रदन्त चक्रवर्त्ती का

बारह मास—

जब वज्रदन्त चक्रवर्त्ती को वैराग्य उत्पन्न हुआ, तब वे अपने पुत्रों को राज्य देना चाहते हैं परन्तु पुत्र भी परम वैराग्ययुक्त होकर राज्य अंगीकार नहीं कर रहे हैं। तिनके परस्पर जवाब सवाल और वैराग्य भावना का यह बारह मासा नैनसुखदासजी कृत यहां लिखा जा रहा है :—

॥ मंगलाचरण ॥

सवैया ३१ सा—

बंदूं मैं जिनन्द परमानन्द के कंद जगबंद विमलेन्दु जड तातप हरन को। इन्द्र धरणेन्द्र गौतमादिक गणेन्द्र जाहि सेत्र रावरंक भव सागर तरणकों॥ निर्बन्ध निर्द्वंद दीनबन्धु दयासिंधु करे उपदेश परमारथ करन को। गावें नैन सुखदास वज्रदंत बारह मांस जासों मिटजाय भय जनम मरन को॥ १॥

कथा

॥ दोहा ॥

वज्रदन्त चक्रेश की, कथा सुनो मनलाय।
कर्म काट शिवपुर गये, बारह भावन भाय॥

सवैया ३१ सा.

बैठे वज्रदन्तराय अपनी सभा लगाय, ताके पास बैठे राय बत्तीस हजार हैं। इन्द्र कैसे भोगेसार—
रानी छाणवे हजार, पुत्र एक सहस्र महान गुण गा रहैं।
जाके पुन्य प्रचंड से नये हैं, बलवंत शत्रु हाथ जोड़ मान छोड़ सेवे दरबार हैं। ऐसो काल पाय माली लायो एक डाली, तामें देख्यो अलिअम्बु मरण भय कार है।

॥ चक्रवर्त्ती का वैराग्य वर्णन ॥

सवैया ३१ सा.

अहो यह भोग महा पाप को संयोग, देखो डाली में। कमल तामें भौंरा प्राण हरे है। नासिका के हेतु भयो ॥ भग में अचेत सारी रैन के कलाप में विलाप इन करयो हैं ॥ हम तो हैं पांचों ही के भोगी भये जोगी नाहिं, विषय कषायन के जाल मांहि परे हैं। जो न अब हित करूं नजाने कौन गति परूं सुतन बुलायके यों वच अनुसरे हैं ॥

॥ चक्रवर्त्ती का वचन पुत्रों से ॥

सवैया ३१ सा.

अहो सुतजगरीति देख के हमारी नीति भई है उदास। वनोवास अनुसरेंगे। राज भार शीश धरो प्रजा का हित करो, हम कर्म शत्रुन की फौजन सों लरेंगे ॥ सुनत वचन तब कहत कुमार सब, हम उगाल को न अंगीकार करेंगे। आप बुरो जान छोड़ो, हमें जग जाल बोडो तुमरे ही संग पंच महाव्रत धरेंगे ॥

॥ पिता वचन अषाढ़ मास ॥१॥

चौपाई.

सुत असाढ़ आयो पावसकाल, सिरपर गर्जत यम विकराल
लेहु राज सुख करहु विनीत, हम वन जाव बड़नकी रीति

गीता.

जाय तप के हेतु बनको, भोग तज संयम धरें ।
तज ग्रन्थ सब निर्ग्रंथ हो, संसार सागर से तिरें ॥
येही हमारे मन बसी, तुम रहो धीरज धारि के ।
कुल आपने की रीति चालो, राज नीति विचार के ॥

जवाब पुत्रों का पिता से

चौपाई.

पिता राज तुम कीनो बौंन, ताहि ग्रहण हम समरथ हों न ।
यह भौंरा भोगन की व्यथा, प्रकट करत कर कंकन यथा ॥

गीता.

यथा करका कांगना, मनमुख प्रगट नजरों परे ।
त्योंही पिता भौंरा निरख, भव भोग से मन थर हरे ॥
तुमने विपन के वास ही को सुख अंगीकृत किया ।
मेरी समझ सोई समझ, हमरी हमें नृपपद क्यों दिया ॥

पिता बचन श्रावण मास ।२।

चौपाई

श्रावण पुत्र कठिन बनवास, जल थल शीत पवनकी त्रास ।
जो नहीं पले साधु आचार, तो मुनि भेष लजावे सार ॥

गीता —

लाजे श्रीमुनि भेष तातें, देह का साधन करो ।

सम्यक्त्व युत व्रत पंच में तुम देशव्रत मन में धरो ॥
हिंसा असत चोरी परिग्रह ब्रह्मचर्य सुधार के।
कुल आपने की रीति चालो, राज नीति विचार के ॥

पुत्रों का उत्तर.

चौपाई.

पिता अंग यह हमरो नांहि, भूख प्यास पुदगल पर छांहि।
जाय परीषह कबहुं न भजें, धर सन्यास मरण तन तजें ॥

गीता

सन्यास धर तन को तजें, नहि डंश मशकन से डरें।
रहें नगन तन बन खण्ड में, जहां मेघ मूसल जल परें ॥
तुम धन्य हो बड भाग तज के राज, तप उद्यम किया।
तुमरी समझ सोइ समझ हमरी, हमें नृपपद क्यों दिया ॥

पिता के बचन भादौ मास ३

चौपाई—

भादों में सुत उपजे रोग, आवे याद महल के भोग।
जो प्रमाद वश आसन टले, तो न दयाव्रत तुमसे पले ॥

गीता

जब दयाव्रत नाहीं पले उपहास जगमें विस्तरे।
अरहंत अरु निर्ग्रन्थ को, कहो कौन फिर सरधा करै ॥

तातें करो मुनि दान पूजा, राज काज संभार के।
कुल आपने की रीति चालो, राज नीति विचार के ॥

॥ पुत्रों का वचन पिता से ॥

चौपाई

हम तज भोग चलेंगे साथ, मिटे रोग भव भवके तात।
समता मंदिर में पग धरें, अनुभव अमृत सेवन करें ॥

गीता

करें अनुभव पान आतम, ध्यान वीणा कर धरें।
आलाप मेघ मलार सोहं, सप्त भंगी स्वर भरें ॥
घृक् धृक् पखावज भोगकों, संतोष मन में कर लिया।
तुमरी समझ सोइ समझ हमरी, हमें नृपपद क्यों दिया।

पिता के वचन आसौज मास ४

चौपाई

आसोज भोग तजे नहिं जायं, भोगी जीवन को डसि खायं।
मोह लहर जियकी सुधि हरे, ग्यारह गुण थानक चढ़ गिरें ॥

गीता

गिरि के जु थानक ग्यारवें से, आय मिथ्या भू परें।
बिन भाव की थिरता जगत में, चतुर्गति के दुख भरें॥
रहैं द्रव्यलिंगी जगत में, बिन ज्ञान पौरुष हारके।
कुल आपने की रीति चालो, राज नीति विचार के॥

पुत्रों का वचन.

चौपाई

विषय विडार पिता तन कसें, गिरि कंदर निर्जन बन बसें।
महामंत्र को लखि परभाव, भोग भुजंग न घाले घाव ॥

गीता—

घाले न भोग भुजंग तब, क्यों मोह की लहिरां चढे।
परमाद तज परमात्मा, परकाश जिन आगम पढे ॥
फिर काल लब्धि उद्योत होय, सुहोय यों मन थिर किया।
तुमरी समझ सोइ समझ हमरी, हमें नृपपद क्यों दिया ।

कार्तिक मास पिता के वचन ५

चौपाई

कार्तिक में सुत करे विहार, कांटे कंकर चुभे अपार ।
मारें दुष्ट खंच के तीर, फाटे उर थरहरे शरीर ॥

गीता.

थरहरे सगरी देह अपने, हाथ काढ़त नहीं बने ।
नहिं और काहू से कहें, तब देह की थिरता हनें ॥
कोई खेंच बांधे खभ से कोई खाय आंत निकार के ।
कुल आपने की रीति चालो, राज नीति विचार के ॥

पुत्रों का वचन पिता से

चौपाई.

पद पद पुन्य धरा में चलें, काटे पाप सकल दलमले।
क्षमा ढाल तल धरे शरीर, विफल करें दुष्टन के तीर ॥

गीता.

कर दुष्ट जन के तीर निष्फल, दया कुंजर पर चढ़ें।
तुम संग समता खड्ग लेकर, अष्ट कर्मन ते लड़ें ॥
धन धन्य यह दिन वार प्रभु, तुम योगका उद्यम किया।
तुमरी समझ सोइ समझ हमरी, हमें नृप पद क्यों दिया ॥

अगहन मास पिता के वचन ६

चौपाई

अगहन मुनि तटिनी तट रहें, ग्रीषम शैल शिखर दुख सहें।
पुनि जब आवत पावस काल, रहें साधुजन बन विकराल ॥

गीता

रहें बन विकराल में जहां, सिंह स्याल सतावही।
कानों में बिच्छू बिल करें अरु व्याल तन लिपटावही ॥
दें कष्ट प्रेत पिशाच आन, अंगार पाथर डार के।
कुल आपने की रीति पालो, राज नीति विचार के ॥

पुत्रों का बचन

चौपाई

हे प्रभु बहुतवार दुख सहे, बिना केवली जाय न कहे।
शीत उष्ण नरकन के तात, करत याद कम्पै सब गात ॥

गीता.

गात कम्पै नर्क से लहि, शीत उष्ण अथायही।
जहां लाख योजन लोह पिण्ड, सुहोय जल गल जायही ॥
असिपत्र बनके दुख सहे, परवश स्ववश तब ना किया।
तुमरी समझ सोइ समझ हमरी, हमें नृपपद क्यों दिया ॥

पौष मास पिता का वचन ७

चौपाई.

पौष अर्थ अरुलेहु गयंद, चौरासी लख लख सुख कंद।
कोडि अठारह घोड़ा लेहु, लाख कोडि हल चलत गिनेहु ॥

गीता.

लेहु हल लख कोड़ि षट खंड, भूमि अरु नव निधि बड़ी।
लेहु देश कोष विभूति हमरी, राशि रतनन की पड़ी ॥
धर देहुं सिर पर छत्र तुमरे, नगर घोष उचारि के।
कुल आपने की रीति चालो, राज नीति विचार के ॥

॥ पुत्रों का बचन पिता से ॥

चौपाई.

अहो कृपानिधि तुम परसाद, भोगे भोग सबै मर्याद।
अब न भोग की हमको चाह, भोगन में भूले शिवराह ॥

गीता

राह भूले मुक्ति की बहुबार, सुरगति संचरे।
जहां कल्पवृक्ष सुगन्ध सुन्दर, अपछरा मनको हरे॥
जो उदधि पी नहि भया तिरपत, ओस पीके दिन जिया।
तुमरी समझ सोइ समझ हमरी, हमें नृपपद क्यों दिया॥

पिता के वचन माघ मास ८

चौपाई

माघ मघे न सुरनतें मोय, भोग भूमियन तें नहि होय।
हरिहर अरु प्रतिहरि से वीर, संयमहतु धरें नहिं धीर॥

गीता.

संयम कूँ नहि धरें, धीरज नहि टरें रणमें युद्ध सूँ।
जो शत्रु गण गजराज को, दल मले पकड़ विरुद्ध सूँ॥
पुनि कोटशिल मुग्दर समानी, देय फक उपार के।
कुल आपने की गति चालो, राज नीति विचार के॥

॥ पुत्रों का वचन पिता से ॥

चौपाई

बंध योग उद्यम नहिं करें, एतो तात करम फल भरें।
बांधे पूरव भव गति जिसी, भुगतें जीव जगत में तिसी॥

गीता.

जीव भुगतें कर्म फल कहो, कौन विधि संयम धरें।
जिन बंध जैसा बांधियो, तैसा ही सुख दुख को भरें॥

यों जान सबको बंध में, निवन का उद्यम किया।
तुमरी समझ सोइ समझ हमरी, हमें नृपपद क्यों दिया॥

पिता के वचन फाल्गुन मास ९

चौपाई.

फाल्गुन चाले सीतल वायु, थर थर कंपे सब की काय।
तब भव बंध विदारण हार, त्यागें भू महाव्रत सार॥

गीता.

सार परिग्रह व्रत विसारें, अग्नि चहुं दिश जारहीं।
करें मूढ़ शीत विनीत दुर्गति, गहें हाथ पसार ही॥
सो होंय प्रेत पिशाच भूतरु, ऊत शुभगति टारके।
कुल आपने की रीति चालो, राज नीति विचार के॥

पुत्रों का वचन

चौपाई

हे मतिबंध कहा तुम कही, प्रलय पवन की वेदन सही।
धारी मच्छ कच्छ की काय, सहे दुख जलचर पर्याय॥

गीता—

पाय पशु पर्याय पर वश, रहे शृंग बधाय के।
जहां रोम रोम शरीर कम्पे, मरे तन तड़फाय के॥
फिर गेर चाम उचेर श्वान, शिवान मिल श्रोणित पिया।
तुमरी समझ सोइ समझ हमरी, हमें नृपपद क्यों दिया॥

चैत्र मास पिता का वचन १०

चौपाई.

चैत्र लता मदनोदय होय, ऋतु वसंत में फूले सोय।
तिन की इष्ट गन्ध के जोर, जागे काम महा बल फोर ॥

गीता

फोर बल को काम जागे, लेय मन पुर छीन ही।
फिर ज्ञान परम निधान हरिके, करे तेरा तीन ही।
इनके न उतके तब रहै, गये कुगति दोउ कर भार के।
कुल आपने की रीति चालो, राज नीति विचार के ॥

पुत्रों का वचन

चौपाई

ऋतु वसंत बन में ना रहे, भूमि मशान परीषह सहें।
जहां नहीं हरितकाय अंकूर, उड़त निरन्तर अहनिशि धूर ॥

गीता

उड़े बनकी धूर निशि दिन, लगें कांकर आयके।
सुन शब्द प्रेत प्रचण्ड के, तब काम जाय पलायके ॥
मत कहो अब कछु और प्रभु, भव भोग से मन कंपिया।
तुमरी समझ सोइ समझ हमरी, हमें नृपपद क्यों दिया ॥

पिता के वचन वैशाख मास ११

चौपाई

मास वैशाख सुनत अरदास, चक्री मन उपजो विश्वास।

अब बोलन को नाहीं ठौर, मैं कछु कहूँ पुत्र कहें और ॥

गीता.

और अब कछु मैं कहूँ नहि, रीति जग की कीजिये।
इकबार हम से राज लेकर, चाहे जिस को दीजिये ॥
पोता था इक षटमास का, अभिषेक कर राजा कियो।
पितु संग सब जगजाल सेती, निकस बन मारग लियो ॥

कवि वचन

चौपाई.

उठे वज्रदन्त चक्रेश, तीस सहस नृप तजि बल वेश।
एक हजार पुत्र बड़ भाग, साठ सहस्र सती जग त्याग ॥

गीता

त्याग जगको यह चले सब, भोग तज, ममता हरी।
सम भावकर तिहुं लोक के, जीवों से यों विनती करी ॥
अहो जेते जीव जग में, क्षमा हमपर कीजिये।
हम जैन दीक्षा लेत हैं, तुम वैर सब तज दीजिये ॥

गीता

वैर सब से हम तजा, अरहंत का शरणा लिया।
श्री सिद्ध साहू की शरण, सर्वज्ञ के मत चित दिया ॥
यों भाष पिहिताश्रव गुरुन ढिग जैन दीक्षा आदरी।
कर लौंच तज के सोच, सबने ध्यान में दृढ़ता धरी ॥

जेठ मास कवि वचन १२

चौपाई

जेठ मास लू ताती चले, सूखे सर कपिगण मद गले।
ग्रीषमकाल शिखर के शीश, धरयो आतापन योग मुनीश॥

गीता

धर योग आतापन सुगुरु ढिग, शुकल ध्यान लगाइयो।
तिहुँ लोक भानु समान केवल, ज्ञान तिन प्रगटाइयो॥
धन वज्रदन्त मुनीश जग तज, कर्म के सन्मुख भये।
निज काज अरु परकाज करके, समय में शिवपुर गये।

कवि वचन

चौपाई

सम्यक्त्वादि सुगुण आधार, भये निरंजन निर आकार।
आवागमन जलांजुलि दई, सब जीवन की शुभ गति भई॥

गीता

भई शुभगति सबन की, जिन शरण जिन पति की लई।
पुरुषार्थ सिद्धि उपाय में, परमार्थ की सिद्धि भई॥
जो पढ़े बारह मास भावन, भाय चित हुलसाय के।
तिने के हों मंगल नित नये, अरु विघ्न जाय पलाय के॥

दोहा

नित नित नव मंगल बढे, पढ़े जो यह गुण माल।
सुर नर के सुख भोग कर, पावें मोक्ष रसाल॥

भजन भौंमराज जी चूड़ीवाल कृत

जिन्हों के दर्श करने को, भव्य प्राणी तरसते थे,
हरषते नाम सुन सुनकर यही वे सूर्य सागर हैं ॥टेक॥
जगाया जैन जाति को, बताया सत्य शिव मारग।
मिटाई फूट आपस की, यही वे सूर्य सागर हैं ॥१॥
नहीं है प्रेम भक्तों से, नहीं है द्वेष द्रोही से।
नजर है एकसी सब पै यही वे सूर्य सागर हैं ॥२॥
सौम्य मुस्कान सूरत है, सरल मृदु बैन बोले है।
कपट अभिमान नहिं जिनके, यही वे सूर्यसागर हैं ॥३॥
सूर्य की ज्योति के आगे, छिपाते दोष को अपने।
दबी है चन्द्र की आभा, यही वे सूर्य सागर हैं ॥४॥
नहीं अटवी भयानक है, नहीं मरघट डरावन है।
नहीं अहि व्याघ्र की शंका, यही वे सूर्य सागर हैं ॥५॥
अनेकों को अजैनों को, लगाया जैन मारग में।
दिखाई जैन मुनि मुद्रा, यही वे सूर्य सागर हैं ॥६॥
सहे हिम धूप की बाधा, न डर तूफान वर्षा का।
अकंपन आत्मा जिनकी, यही वे सूर्यसागर हैं ॥७॥
श्रेष्ठ आदर्श साधु हैं, अचल चारित्र है जिनका।
आष मार्गानुगामी हैं, यही वे सूर्यसागर हैं ॥८॥
परीक्षा की कसौटी पर, मुनिपन को परख करके।
भौमने सिर नमाया है, यही वे सूर्य सागर हैं ॥९॥

कव्वाली

उदय जब पाप आता है नाच नाना नचाता है।
ये वर्षों की कमाई को च्णक भर में नशाता है ॥टेक॥
न भाई बंधु रिश्तेदारे कोई काम आता है।
समझते मित्र थे जिसको वह आँखें अब दिखाता है ॥१॥
थी इज्जत आँख में जिसकी वह अब नफरत जताता है।
भरोसा जिस पै था भारी, धत्ता वो ही बताता है ॥२॥
जलीलो ख्वार दुनियां में, गजब ऐसा बनाता है।
कि आतम घात कर डालूं यही वश दिल को भाता है ॥३॥
त्रिखंडी भूप को भी, जब कर्म आकर सताता है।
न खाने को मिले दाना, न जल पीने को पाता है ॥४॥
बुरा जिसने हुआ तेरा, उसे दुश्मन बताता है।
निमित्त कारण फकत है वह क्यों उसपे रोश खाता है ॥५।
यही कर्मों का फल सब है, न दुख का और दाता है।
जो समता से सहन करले, वही शिव सुख को पाता है ॥६।

ब्रह्मचारी ज्ञानानन्द जी कृत

अति पुण्य उदय मम आया, प्रभु तुमरा दर्शन पाया।
अब तक तुमको बिन जाने, दुख पाये निज गुण हाने ॥ दौड़
पाये अनन्ते दुख अबतक, जगत को निज जानकर।
सर्वज्ञ भाषित जगत हितकर, धर्म नहि पहिचानकर ॥
भव बंध कारक सुख प्रहारक, विषय में सुख मानकर।

निज पर विवेचक ज्ञान मय सुखनिधि सुधा नहिं पान कर॥१
तब पद मम उर में आये, लखि कुमति विमोह पलाये।
निज ज्ञान कला उर जागी, रुचि पूर्ण स्वहित में लागी॥दौड़
रुचि लगी हित में आत्म के, सत संग में अब मन लगा।
मनमें हुई अब भावना, तब भक्ति में जाऊँ रँगा॥
प्रिय वचन की हो टेव गुणी गुण,लगन में ही चित पगै।
शुभ शास्त्र का नित हो मनन, मन दोष वादन में भगै॥२॥
कब ममता उर में लाकर, द्वादश अनुप्रेक्षा भाकर।
ममता मय भूत भगा कर, मुनिव्रत धारूँ वन जाकर॥दौड़
धर कर दिगंबर रूप कब, अठवीस गुण पालन करूँ।
दोवीस परिषह सह सदा, शुभ धर्म दश धारण करूँ॥
तप तपूँ द्वादश विधि सुखद नित, बंध आश्रव परि हरूँ।
अरु रोक नूतन कर्म संचित, कर्म रिपु को निर्जरूँ॥३।
कब धन्य सुअवसर पाऊँ, जब निज में ही रम जाऊँ।
कर्तादिक भेद मिटाऊँ, रागादिक दूर भगाऊँ॥ दौड़
कर दूर रागादिक निरंतर, आत्म को निर्मल करूँ।
बल ज्ञान दर्शन सुख अतुल लहि,चारित्र क्षायिक आचरूँ॥
आनन्द कन्द जिनेन्द्र बन, उपदेश को नित उच्चरूँ।
आवै अमर कब सुखद दिन,'जब' दुखद भवसागर तिरूँ॥४।

॥ इति शुभम् ॥